International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-12-2021, Accepted: 27-12-2021, Published: 12-01-2022
Volume 8; Issue 1; 2022; Page No. 18-20

भ्रमरगीत परम्परा और सूरदास

लाड कंवर चौहान
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय फलीचड़ा, मावली (उदयपुर), महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

सारांश
साहित्य में भ्रमरगीत लिखने की एक परंपरा रही है। सूरदास ने उसी परंपरा का अनुसरण करते हुए भ्रमरगीत की रचना की। भ्रमरगीत एक प्रवास विप्रलंभ तथा उपालंभ काव्य ह। इसमें विरह की सभी दशाओं का वर्णन किया गया है। सूर के भ्रमरगीत का मूल रूप में एक संदेश काव्य है, इसका उद्देश्य बहुआयामी है। इसमें सामाजिक समानता, स्वतंत्रता स्त्री अस्मिता के महत्व को उजागर किया है इसका एक साहित्यिक महत्व भी हैं, क्योंकि इसमें भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुंदर समन्वय है। सूर ने भ्रमरगीत में उद्भव गोपियों संवाद के माध्यम से निर्गुण साधना पर सगुण महत्ता स्थापित कर गोपियों के प्रेम और विरह का विशद और व्यापक चित्रण किया ह। भ्रमरगीत में सूर ने राधा का चरित्र चित्रण और राधा–कृष्ण प्रेम के माध्यम से स्त्री प्रेम को गौरवान्वित किया है।

मूलशब्द: भ्रमरगीत परम्परा, सामाजिक समानता, स्त्री प्रेम

प्रस्तावना
हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल की सगुण शाखा में कृष्ण काव्य धारा के साथ 'भ्रमरगीत परम्परा' चलती है। भ्रमरगीत परम्परा उस काव्य के लिए रूढ़ हो गया, जिसमें 'उद्धव गोपी संवाद' होता है। हिन्दी काव्य में 'भ्रमरगीत' का मूल स्त्रोत श्रीमद्भागवत पुराण है जिसके दशम् स्कन्ध के छियालिसवें–सैतालीसवें अध्याय में भ्रमरगीत प्रसंग है। 'भ्रमरगीत' का तात्पर्य उस उपालम्भ काव्य से है जिसमें नायक की निष्ठुरता नायिका की मूक व्यथा, विरह वेदना का मार्मिक चित्रण करते हुए नायक के प्रति नायिका के उपालम्भों का चित्रण किया जाता है। भ्रमरगीत में 'भ्रमर' रसलोलुप नायक का प्रतीक माना जाता हैं, जो किसी–किसी एक फूल तक सीमित न होकर, विविध पुष्पों का रसास्वादन करता है। हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत परम्परा के कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं, लेकिन विद्वान भ्रमरगीत परम्परा का प्रारम्भ मैथिल कोकिल विद्वापति के पदों से मानते हैं किन्तु विधिवत् रूप से भ्रमरगीत परम्परा का प्रारम्भ सूरदास से हुआ हैं।

भ्रमरगीत परम्परा के कुछ प्रमुख ग्रन्थ हैं
1. भंवरगीतः भ्रमरगीत परम्परा का ग्रन्थ है जिसमें कविवर नंददास ने उद्धव–गोपी संवाद और गोपियों की विरह दशा का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ उनके दार्शनिक विचारों, परिपक्व ज्ञान एवं विवेक बुद्धि के साथ भक्ति भावना का परिचायक है। इस ग्रन्थ में गोपियों को सूरदास की गोपियाँ की तुलना में अधिक तर्कशील बताया है। भ्रमरगीत परम्परा का यह ग्रन्थ बौद्धिक स्तर पर उच्चकोटि का ग्रन्थ है।

2. भ्रमरदूतः ब्रज कोकिल उपाधि से विभूषित सत्यनारायण कविरल का यह काव्य ग्रन्थ भ्रमरगीत परम्परा का प्रमुख ग्रन्थ है। इस काव्य ग्रन्थ में माता यशोदा अपने पुत्र श्रीकृष्ण के द्वारका चले जाने पर वात्सल्य वियोग का समावेश किया गया है। माता यशोदा ने एक भ्रमर को अपना दूत बनाकर कृष्ण को संदेश भेजते है अतः यह ग्रन्थ भ्रमरगीत परम्परा के अन्तर्गत आता है। भ्रमरदूत का प्रतिपाद्य विषय युगीन समस्याओं का चित्रण करना, जिसमें नारी शिक्षा की समस्या, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव की समस्या, देश में नेतृत्व के अभाव आदि समस्याओं का चित्रण किया गया है।

3. प्रियप्रवासः अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित भ्रमरगीत परम्परा का प्रमुख ग्रन्थ है। कवि ने इस ग्रन्थ का नाम 'ब्रजांगना–विलाप' रखा था। इसमें श्रीकृष्ण के चले जाने पर ब्रज जनों के विलाप का उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ का नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा है। इसमें राधा को लोकहितकारिणी रूप में चित्रित किया है। यह काव्य ग्रन्थ 17 सर्गों में विभक्त है। इस ग्रन्थ का दसवां–ग्यारहवां सर्ग उद्धव प्रसंग से सम्बन्धित है। चौदहवां सर्ग गोपी–उद्धव संवाद और सोलहवां सर्ग में राधा–उद्धव संवाद से सम्बन्धित होने से इसको भ्रमरगीत परम्परा का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है।

4. उद्धवशतकः बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर द्वारा रचित भ्रमरगीत परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। इस काव्य ग्रन्थ में भक्तिकालीन आख्यान और रीतिकालीन कलेवर का उद्भूत संयोग हुआ है। भाषा और उक्ति चातुर्य वर्णन कौशल में अद्वितीय ग्रन्थ है।

आधुनिक काल में भारतेंदु बाबू ने अपने कुछ छंदों में भ्रमरगीत की उद्भावना की है जिनमें गोपी–उद्धव संवाद है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थों में भ्रमर को प्रतीक बनाकर अन्योक्ति के माध्यम से कृष्ण पर जो उपालम्भ किए उसी को 'भ्रमरगीत' नाम दिया गया।

सूरदास का भ्रमरगीत
सूरदास भक्तिकाल में कृष्ण काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि है। अष्टछाप कवियों में इनका प्रमुख स्थान है। हिन्दी साहित्य में 'भ्रमरगीत परम्परा' का प्रारम्भ सूरदास से माना जाता है। 'भ्रमरगीत' एक विरह काव्य है जिसमें श्रीकृष्ण और गेपियों का विरह वर्णन है। श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले जाते है और गोपियाँ विरह में व्याकुल हो गई। किन्तु श्रीकृष्ण को भी ब्रज की गोपियों की याद सताती है। कृष्ण उद्धव से कहते हैं –

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नहीं।।

'भ्रमरगीत' सूरसागर का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी एवं वाग्वैग्दध्यपूर्ण अंश है, जिसमें गोपियों की वचन वक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है। 'भ्रमरगीत' एक सुंदर उपालम्भ काव्य है, जिसमें उद्धव–गोपी

संवाद के माध्यम से निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन किया गया है। इसमें सगुण उपासना का निरूपण हृदय की अनुभूति एवं भावना के आधार पर किया गया है। सूर की मौलिक विशेषता नवीन प्रसंगों की उद्‌भावना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार –

'प्रसंगोद्‌भावना करने वाली ऐसी प्रतिभा हम तुलसी में नही पाते।'

भ्रमरगीत में सूरदास ने प्रेमदशा की मनोवृत्तियों की व्यंजना गोपियों द्वारा व्यक्त की –
सूर की प्रशंसा में प्रसिद्ध दोहा –

किंधौ सूर को सर लग्यो किंध्यों सूर की पीर
किंधौ सूर को पद लग्यों बैध्यों सकल सरीर।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'सूरसागर' के इस भाग को 'भ्रमरगीत सार' नाम से संकलित किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – ''सूर के भ्रमरगीत में जितनी भवुकता एवं सहृदयता है उतनी ही चतुरता एवं वाग्विदग्धता भी है।''
गोपियाँ अपने अभिन्न मित्रउद्‌धव को संदेशवाहक बनाकर गोकुल भेजती है। वहाँ गोपियों से वार्तालाप हुआ तभी एक भ्रमर वहाँ उड़ता हुआ आया। गोपियों ने उस भ्रमर को प्रतीक बनाकर अन्योक्ति के माध्यम से उद्‌धव और कृष्ण पर जो उपालम्भ दिए उसी को भ्रमरगीत नाम दिया – सूरदास की गोपियां भावुक अधिक हैं, तर्कशील कम।
भ्रमरगीत प्रसंग में निर्गुण का खण्डन, सगुण का मण्डन तथा ज्ञान एवं योग की तुलना में प्रेम और भक्ति को श्रेष्ठ बताया। भ्रमरगीत में वैचारिकता, भाव–प्रवणता और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य का उत्कृष्ट संगम है। सूर ने भ्रमरगीत में भक्ति–मार्ग की प्रतिष्ठा की, विरह के द्वारा प्रेम का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है। गोपियों की वाग्विदग्धता, व्यंग्य और उपालम्भ की कलात्मक सृष्टि की है, इसलिए भ्रमरगीत हिन्दी साहित्य का ही नहीं विश्व–कविता का एक सरस आलोकमय अंश है। सूर ने ही भ्रमरगीत में प्रेम की इतनी व्यापकता और गहनता का रसात्मक चित्रण किया है कि प्रेम भक्ति की सहज ही प्रतिष्ठा हो गई।
सूर ने उद्‌धव को निर्गुण ब्रह्म से योग का संदेश देते हुए कम बताया तथा गोपियों के द्वारा की गई अभिव्यक्ति से ही उद्‌धव का पक्ष भी स्पष्ट होता गया है, यह सूर की कलात्मकता का निवेश है। भ्रमरगीत प्रेम–निरूपण का भक्ति–ग्रन्थ ही नहीं काव्य ग्रन्थ बन गया है अर्थात् गोपियों की विरहाभिव्यक्ति द्वारा भक्ति की प्रतिष्ठा की गई है।
सूर ने सम्पूर्ण सृष्टि को प्रेम–मय चित्रित किया, प्रेम को मनुष्य के उत्कृष्ट जीवन मूल्य के रूप में स्थापित किया। गोपियों के परकीया भाव के प्रेम को भी दिव्यता प्रदान की। स्वयं कृष्ण से लेकर नंद, यशोदा, बाल–गोपाल, गोपियाँ, राधा, पशु–पक्षी, यमुना, वृक्ष आदि सभी में प्रेमभाव की प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार सूरदास में भक्ति और श्रृंगार रस दोनों की एक साथ प्रतिष्ठा हुई।
शुक्ल जी के शब्दों में, ''सूर ने श्रृंगार रस का भी कोना–कोना झाँक लिया।''
भ्रमरगीत में गोपियाँ वाक्‌पटु भी है उनकी वाग्विदग्धता इसलिए आकर्षक है कि वे कृष्ण–प्रेम की भावभूमि पर खड़ी है –

ऊधो मन न भए दस।

यही वाग्विदग्धता यशोदा में भी है –

''हम तो धाय तुम्हारे सूत की,
मया करत ही रहियो,
आयो घोष बड़ो ण्यौपारी
देखियत कालिंदी अति कारी।

''ऊधो, मन माने की बात'' आदि कई पदों में गोपियाँ अलग–अलग मनःस्थिति को भिन्न–भिन्न रूप में व्यक्त करती है और यह भी सूर की मौलिकता है। आगे नंददास की गोपियों में इसी वाग्विदग्धता का अधिक विकास होता है। भ्रमरगीत में गोपियों के संदर्भ में ज्ञान–मार्ग की तुलना में प्रेम–मार्ग की प्रतिष्ठा है।
वल्लभाचार्य के शिष्यत्व में सूर ने निर्गुण का मण्डन बंद कर कृष्ण की लीला का और मुख्यतः कृष्ण के प्रति प्रेमभाव का विस्तार से और गहराई से चित्रण किया है और इसी कारण सूरकाव्य में और हिन्दी साहित्य में भक्ति काव्य में भक्ति रस की प्रतिष्ठा हुई।

निर्गुन कौन देस को वासी?
कथा कहत विपरीत युवतिन योग सिखावन आयो।

आदि कथनों में सूर ने ज्ञान मार्ग का खंडन तो नहीं किन्तु गोपियों के लिए भक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा की। भागवत के इस प्रसंग को सूर ने विस्तार, गहराई, तार्किकता और सरसता प्रदान की है।
सूर ने भ्रमरगीत में व्यंग्य और उपालम्भ का उपयोग किया जो नारी–सुलभ है। गोपियों में कहीं आक्रोश, कहीं मान, विवशता तो कहीं करुणा की मर्मस्पर्शी टीस प्रकट की है। भ्रमरगीत सूर की प्रतिभा की उत्कृष्ट सृष्टि है, जिसमें एक ओर उनकी पुष्टिमार्गीय भक्ति की स्थापना, दूसरी ओर विश्व की उत्कृष्ट कविता के रूप में विरह–भाव की गहनता व्यक्त की है। तीसरी ओर ब्रजभाषा का काव्य–सामर्थ्य सिद्ध होता है। संक्षेप में, 'भ्रमरगीत' सूर की मौलिक उद्‌भावनाओं से सम्पन्न एक उत्कृष्ट रचना है।

भ्रमरगीत में विरह–वर्णन

श्रृंगार रस, रसों का राजा है। श्रृंगार का रसराजत्व है, वियोग से प्रेम भाव की उत्कंठा संयोग में नहीं क्योंकि वियोग में ही सघन तादात्म्य समस्त सृष्टि तक व्यापकता है। इसीलिए महाकवि सूर ने गोपियों से कहलवाया है–

''ऊधो विरहौ प्रेम करे।''

इस उक्ति में सूर का प्रेम–दर्शन एवं विरह–दर्शन न्यस्त है। विरह में उनकी निष्ठा के कारण वे हिन्दी साहित्य में ही नहीं विश्व–साहित्य में बेजोड़ हैं। सूर ने 'भ्रमरगीत' में ही लगभग 350 पद विरह पर लिखे हैं, इसलिए सूर ने यशोदा और नंद से लेकर गोपियों, ग्वाल–बाल आदि सबके विरह के साथ–साथ कृष्ण के विरह का भी चित्रण किया है।

सुनहु उद्‌धव मोहिं ब्रज की सुधि नाहिं बिसराय
रैनि सोवत, चलत, जागत–लगत नहिं मन आव।

गोपियाँ श्रीकृष्ण की स्मृतियों में डूबी हैं –

इति बिरियाँ बनते ब्रज आवते

गोपियाँ विरह में व्याकुल मधुवन को कौसती –

मधुवन! तुम कत रहत हरे,
रही पिया बिन सॉपिनी कारी राति नजर आती।

कभी विरह में पपीहा को भला बताती है –

''बहुत दिन जीवौ, पपिहा थारौ''

और कभी उसे उलाहना देती है –

''हौ तो मोहन के विरह जरी रे!
तू कत जारत।

कभी गोपियाँ कोकिल से मधुर वचन सुनना चाहती हैं –

''कोकिल दृष्टि के बोल सुनाउ''

गोपियाँ कुब्जा के भाग्य की सराहना करती हैं –

''सुनहुँ सखि धन्य ते नारी''

विरह की इन विभिन्न दशाओं के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन – ''वियोग की जितनी भी दशाएँ और अन्तर्दशा होती है, सभी सूर के काव्य में मौजूद है।''
सूर के विरह की व्यापकता का एक आयाम है कि मनुष्यों के अलावा, पशु–पक्षी, सारी प्रकृति कृष्ण के विरह में व्याकुल हैं, गायें दूध नहीं देती, यमुना व्याकुल है और विरह में काली पड़ गई। सूर की इसी दार्शनिकता के कारण गोपियाँ पलक झपकने में भी विरह का अनुभव करती है। इस प्रकार सूरदास ने भ्रमरगीत में विरह की सभी दशाओं का वर्णन किया गया।

भ्रमरगीत की वाग्विदग्धता

वाग्विदग्धता का अर्थ – बात करने में चतुर वार्ताकुशल पंडित।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – ''सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और बैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है, जिसमें गोपियों की वचन–वक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है।''
सूर के भ्रमरगीत में गोपियाँ अपने प्रवासी प्रियतम की भेजी गई ज्ञान की पोटली को अस्वीकार कर कृष्ण के प्रति ऐकांतिक प्रेम में निष्ठा व्यक्त करती है, किन्तु उसकीउपेक्षा पर व्यंग्य करना नहीं भूलती। सूर के भ्रमरगीत में भ्रमर के जरिये गोपियों की दर्दभरी टीस को प्रस्तुत किया। भ्रमरगीत में राधा और गोपियाँ एक ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी उक्तियों में पैनापन है। वचन वक्रता के साथ उनकी मर्मभेदी पीड़ा कई रूपों में ढलकर आई है।

''हरि काहे को अंतरजामी''

आदि उक्तियों में गोपियों की खीझ, झुँझलाहट एवं व्यंग्य की ही अभिव्यक्ति है। गोपियाँ अपनी तिलमिलाहट को वचन चातुरी का निशाना बनाती है। वे कभी तो कृष्ण एवं मथुरा के लोगों पर प्रहार करती हैं, कभी कुब्जा पर, कहीं वे उद्धव एवं उनके योग व ज्ञान मार्ग पर निशाना साधती है। इसमें गोपियों का एकनिष्ठ प्रेम भाव व्यक्त हुआ है। आस्था गोपियों की पूँजी है, जिसे श्रीकृष्ण ने छल लिया है। गोपियाँ अनुभव करती है कि कृष्ण काले, अक्रूर और उद्धव काले, कोयल भी काली और उनका हृदय भी काला। कृष्ण की बेवफाई पर अपनी पीड़ा व्यक्त कर कहती है कि नाम तो है 'गोपीनाथ' पर प्रेम करते हैं कुब्जा से।

''काहे को गोपीनाथ कहावत?
जो पै श्याम कूबरी रीझै, सो किन धाम धरावत।''

कुब्जा पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं, यदि योग इतना ही अच्छा है तो उद्धव उसे कुबड़ी को क्यों नहीं दे देते।

''जोग कुबरी दीजै
सूरदास प्रभु रूप निहारै हमसे सम्मुख दीजै''

भ्रमरगीत में सबसे अधिक प्रहार उद्धव झेलते हैं। गोपियाँ उनके योग, ज्ञान एवं पंडिताऊ आचरण की खिल्ली उड़ाती है –

''आयौ जोग सिखावन पांडे''

गोपियाँ अपनी वाक्पटुता के आचरण से हँसी उड़ाकर उद्धव से कहती है –

''ऊधौ! भली करी तुम आए।
ये बात कहि–कहि या दुख में ब्रज के लोग हँसाए।''

गोपियाँ उद्धव के ज्ञान–योग की बातों को उपहास, हँसी आदि तर्कों से काटकर कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम और विरह की गहराई को प्रकट करती है। गोपियों के वाग्वैदग्ध को अधिक मर्मबोधक बनाया है इसीलिए तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को कहना पड़ा – ''सूर में जितनी अधिक सहृदयता और भावना है, उतनी ही वाग्विदग्धता भी है।''

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – रामस्वरूप चतुर्वेदी।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नरेन्द्र।
4. हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास – सरस्वती पाण्डेय, गोविंद पाण्डेय।
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह।